

यमगीता-(१)

['यमगीता' नामसे पुराण-वाङ्मयमें कई गीताएँ मिलती हैं। श्रीविष्णुपुराणके अन्तर्गत समाहित यमगीता उन्हींमेंसे एक है। यमके दूत किन मनुष्योंसे सदैव दूर ही रहते हैं—यही इस लघु कलेवरवाली गीतामें स्वयं यमराजद्वारा अपने दूतोंको बताया गया है। सच्चे भक्तोंके लक्षण बतानेके उपक्रममें जो सदाचार-विषयक चर्चा इसमें की गयी है, वह अत्यन्त प्रभावी होनेके साथ भगवान्‌के किसी भी स्वरूपके उपासकके लिये सहज ग्राह्य हो सकती है। वस्तुतः एक सनातन ब्रह्म ही विभिन्न रूपोंमें अभिव्यक्त है। अतएव विष्णुभक्त पदसे भक्तमात्रका तात्पर्य लेना चाहिये। सरल-सुबोध, परंतु मार्मिक भाषा-शैलीमें निबद्ध कल्याणकारी इस यमगीताको यहाँ सानुवाद प्रस्तुत किया जा रहा है—]

श्रीमैत्रेय उवाच

यथावत्कथितं सर्वं यत्पृष्टोऽसि मया गुरो ।
श्रोतुमिच्छाम्यहं त्वेकं तद्ब्रवान्प्रब्रवीतु मे ॥ १ ॥

श्रीमैत्रेयजी बोले—हे गुरो! मैंने जो कुछ पूछा था, वह सब आपने यथावत् वर्णन किया। अब मैं एक बात और सुनना चाहता हूँ, वह आप मुझसे कहिये ॥ १ ॥

सप्त द्वीपानि पातालविधयश्च महामुने ।
सप्तलोकाश्च येऽन्तःस्था ब्रह्माण्डस्यास्य सर्वतः ॥ २ ॥
स्थूलैः सूक्ष्मैस्तथा सूक्ष्मसूक्ष्मात्सूक्ष्मतैस्तथा ।
स्थूलात्स्थूलतरैश्चैव सर्वप्राणिभिरावृतम् ॥ ३ ॥

हे महामुने! सातों द्वीप, सातों पाताल और सातों लोक—ये सभी स्थान जो इस ब्रह्माण्डके अन्तर्गत हैं; स्थूल, सूक्ष्म, सूक्ष्मतर, सूक्ष्मातिसूक्ष्म तथा स्थूल और स्थूलतर जीवोंसे भरे हुए हैं ॥ २-३ ॥

यमगीता (१) ❁❁❁



यमराजद्वारा अपने दूतको भक्तका लक्षण बताना

अङ्गुलस्याष्टभागोऽपि न सोऽस्ति मुनिसत्तम ।

न सन्ति प्राणिनो यत्र कर्मबन्धनिबन्धनाः ॥ ४ ॥

हे मुनिसत्तम ! एक अंगुलका आठवाँ भाग भी कोई ऐसा स्थान नहीं है, जहाँ कर्म-बन्धनसे बँधे हुए जीव न रहते हों ॥ ४ ॥

सर्वे चैते वशं यान्ति यमस्य भगवन् किल ।

आयुषोऽन्ते तथा यान्ति यातनास्तत्प्रचोदिताः ॥ ५ ॥

किंतु हे भगवन् ! आयुके समाप्त होनेपर ये सभी यमराजके वशीभूत हो जाते हैं और उन्हींके आदेशानुसार नरक आदि नाना प्रकारकी यातनाएँ भोगते हैं ॥ ५ ॥

यातनाभ्यः परिभ्रष्टा देवाद्यास्वथ योनिषु ।

जन्तवः परिवर्तन्ते शास्त्राणामेष निर्णयः ॥ ६ ॥

तदनन्तर पाप-भोगके समाप्त होनेपर वे देवादि योनियोंमें घूमते रहते हैं—सकल शास्त्रोंका ऐसा ही मत है ॥ ६ ॥

सोऽहमिच्छामि तच्छ्रोतुं यमस्य वशवर्तिनः ।

न भवन्ति नरा येन तत्कर्म कथयस्व मे ॥ ७ ॥

अतः आप मुझे वह कर्म बताइये, जिसे करनेसे मनुष्य यमराजके वशीभूत नहीं होता; मैं आपसे यही सुनना चाहता हूँ ॥ ७ ॥

श्रीपराशर उवाच

अयमेव मुने प्रश्नो नकुलेन महात्मना ।

पृष्टः पितामहः प्राह भीष्मो यत्तच्छृणुष्व मे ॥ ८ ॥

श्रीपराशरजी बोले—हे मुने ! यही प्रश्न महात्मा नकुलने पितामह भीष्मसे पूछा था । उसके उत्तरमें उन्होंने जो कुछ कहा था, वह सुनो ॥ ८ ॥

भीष्म उवाच

पुरा ममागतो वत्स सखा कालिङ्गको द्विजः ।

स मामुवाच पृष्टो वै मया जातिस्मरो मुनिः ॥ ९ ॥

तेनाख्यातमिदं सर्वमित्थं चैतद्भविष्यति ।
तथा च तदभूद्वत्स यथोक्तं तेन धीमता ॥ १० ॥

भीष्मजीने कहा—हे वत्स! पूर्वकालमें मेरे पास एक कलिंग-देशीय ब्राह्मण-मित्र आया और मुझसे बोला—‘मेरे पूछनेपर एक जातिस्मर मुनिने बतलाया था कि ये सब बातें अमुक-अमुक प्रकार ही होंगी।’ हे वत्स! उस बुद्धिमान्ने जो-जो बातें जिस-जिस प्रकार होनेको कही थीं, वे सब ज्यों-की-त्यों हुई ॥ ९-१० ॥

स पृष्टश्च मया भूयः श्रद्धधानेन वै द्विजः ।
यद्यदाह न तद्दृष्टमन्यथा हि मया क्वचित् ॥ ११ ॥

इस प्रकार उसमें श्रद्धा हो जानेसे मैंने उससे फिर कुछ और भी प्रश्न किये और उनके उत्तरमें उस द्विजश्रेष्ठने जो-जो बातें बतलायीं, उनके विपरीत मैंने कभी कुछ नहीं देखा ॥ ११ ॥

एकदा तु मया पृष्टमेतद्यद्भवतोदितम् ।
प्राह कालिङ्गको विप्रस्मृत्वा तस्य मुनेर्वचः ॥ १२ ॥
जातिस्मरेण कथितो रहस्यः परमो मम ।

यमकिङ्करयोर्योऽभूत्संवादस्तं ब्रवीमि ते ॥ १३ ॥

एक दिन, जो बात तुम मुझसे पूछते हो, वही मैंने उस कालिङ्ग ब्राह्मणसे पूछी। उस समय उसने उस मुनिके वचनोंको याद करके कहा कि उस जातिस्मर ब्राह्मणने यम और उनके दूतोंके बीचमें जो संवाद हुआ था, वह अति गूढ़ रहस्य मुझे सुनाया था। वही मैं तुमसे कहता हूँ ॥ १२-१३ ॥

कालिङ्ग उवाच

स्वपुरुषमभिवीक्ष्य पाशहस्तं
वदति यमः किल तस्य कर्णमूले ।

परिहर मधुसूदनप्रपन्नान्
प्रभुरहमन्यनृणामवैष्णवानाम् ॥ १४ ॥

कालिङ्ग बोला—अपने अनुचरको हाथमें पाश लिये देखकर

यमराजने उसके कानमें कहा—भगवान् मधुसूदनके शरणागत व्यक्तियोंको छोड़ देना; क्योंकि मैं, जो विष्णुभक्त नहीं हूँ—ऐसे अन्य पुरुषोंका ही स्वामी हूँ॥ १४॥

अहममरवरार्चितेन

धात्रा

यम इति लोकहिताहिते नियुक्तः ।

हरिगुरुवशगोऽस्मि

न

स्वतन्त्रः

प्रभवति संयमने ममापि विष्णुः ॥ १५ ॥

देव-पूज्य विधाताने मुझे 'यम' नामसे लोकोंके पाप-पुण्यका विचार करनेके लिये नियुक्त किया है। मैं अपने गुरु श्रीहरिके वशीभूत हूँ, स्वतन्त्र नहीं हूँ। भगवान् विष्णु मेरा भी नियन्त्रण करनेमें समर्थ हैं॥ १५॥

कटकमुकुटकर्णिकादिभेदैः

कनकमभेदमपीष्यते

यथैकम् ।

सुरपशुमनुजादिकल्पनाभि-

हैरिखिलाभिरुदीर्यते

तथैकः ॥ १६ ॥

जिस प्रकार सुवर्ण भेदरहित और एक होकर भी कटक, मुकुट तथा कर्णिका आदिके भेदसे नानारूप प्रतीत होता है, उसी प्रकार एक ही हरिका देवता, मनुष्य और पशु आदि नानाविध कल्पनाओंसे निर्देश किया जाता है॥ १६॥

क्षितितलपरमाणवोऽनिलान्ते

पुनरुपयान्ति

यथैकतां

धरित्र्याः ।

सुरपशुमनुजादयस्तथान्ते

गुणकलुषेण

सनातनेन

तेन ॥ १७ ॥

जिस प्रकार वायुके शान्त होनेपर उसमें उड़ते हुए परमाणु पृथिवीसे मिलकर एक हो जाते हैं, उसी प्रकार गुण-क्षोभसे उत्पन्न हुए समस्त

देवता, मनुष्य और पशु आदि [उसका अन्त हो जानेपर] उस सनातन परमात्मामें लीन हो जाते हैं ॥ १७ ॥

हरिममरवरार्चिताङ्घ्रिपद्मं

प्रणमति यः परमार्थतो हि मर्त्यः ।

तमपगतसमस्तपापबन्धं

ब्रज परिहृत्य यथाग्निमाज्यसिक्तम् ॥ १८ ॥

जो भगवान्‌के सुरवरवन्दित चरणकमलोंकी परमार्थबुद्धिसे वन्दना करता है, घृताहुतिसे प्रज्वलित अग्निके समान समस्त पाप-बन्धनसे मुक्त हुए उस पुरुषको तुम दूरहीसे छोड़कर निकल जाना ॥ १८ ॥

इति यमवचनं निशम्य पाशी

यमपुरुषस्तमुवाच धर्मराजम् ।

कथय मम विभो समस्तधातु-

र्भवति हरेः खलु यादृशोऽस्य भक्तः ॥ १९ ॥

यमराजके ऐसे वचन सुनकर पाशहस्त यमदूतने उनसे पूछा— ‘प्रभो! सबके विधाता भगवान्‌ हरिका भक्त कैसा होता है, यह आप मुझसे कहिये’ ॥ १९ ॥

यम उवाच

न चलति निजवर्णधर्मतो यः

सममतिरात्मसुहृद्विपक्षपक्षे ।

न हरति न च हन्ति किञ्चिदुच्चैः

सितमनसं तमवेहि विष्णुभक्तम् ॥ २० ॥

यमराज बोले—जो पुरुष अपने वर्ण-धर्मसे विचलित नहीं होता, अपने सुहृद् और विपक्षियोंके प्रति समान भाव रखता है, बलपूर्वक किसीका द्रव्य हरण नहीं करता, और न किसी जीवकी हिंसा ही करता है, उस निर्मलचित्त व्यक्तिको भगवान्‌ विष्णुका भक्त जानो ॥ २० ॥

कलिकलुषमलेन यस्य नात्मा
विमलमतेर्मलिनीकृतस्तमेनम् ।
मनसि कृतजनार्दनं मनुष्यं
सततमवेहि हरेरतीवभक्तम् ॥ २१ ॥

जिस निर्मलमतिका चित्त कलि-कल्मषरूप मलसे मलिन नहीं हुआ और जिसने अपने हृदयमें सर्वदा श्रीजनार्दनको बसाया हुआ है, उस मनुष्यको भगवान्का अतीव भक्त समझो ॥ २१ ॥

कनकमपि रहस्यवेक्ष्य बुद्ध्या
तृणमिव यः समवैति वै परस्वम् ।
भवति च भगवत्यनन्यचेताः
पुरुषवरं तमवेहि विष्णुभक्तम् ॥ २२ ॥

जो एकान्तमें पड़े हुए दूसरेके सोनेको देखकर भी उसे अपनी बुद्धिद्वारा तृणके समान समझता है और निरन्तर भगवान्का अनन्यभावसे चिन्तन करता है, उस नरश्रेष्ठको विष्णुका भक्त जानो ॥ २२ ॥

स्फटिकगिरिशिलामलः क्व विष्णु-
र्मनसि नृणां क्व च मत्सरादिदोषः ।
न हि तुहिनमयूखरश्मिपुञ्जे
भवति हुताशनदीप्तिजः प्रतापः ॥ २३ ॥

कहाँ तो स्फटिकगिरि-शिलाके समान अति निर्मल भगवान् विष्णु और कहाँ मनुष्योंके चित्तमें रहनेवाले राग-द्वेषादि दोष! [इन दोनोंका संयोग किसी प्रकार नहीं हो सकता] हिमकर (चन्द्रमा)- के किरणजालमें अग्नि-तेजकी उष्णता कभी नहीं रह सकती है ॥ २३ ॥

विमलमतिरमत्सरः प्रशान्त-
श्शुचिचरितोऽखिलसत्त्वमित्रभूतः ।

प्रियहितवचनोऽस्तमानमायो

वसति सदा हृदि तस्य वासुदेवः ॥ २४ ॥

जो व्यक्ति निर्मल-चित्त, मात्सर्यरहित, प्रशान्त, शुद्ध-चरित्र, समस्त जीवोंका सुहृद्, प्रिय और हितवादी तथा अभिमान एवं मायासे रहित होता है, उसके हृदयमें भगवान् वासुदेव सर्वदा विराजमान रहते हैं ॥ २४ ॥

वसति हृदि सनातने च तस्मिन्

भवति पुमाञ्जगतोऽस्य सौम्यरूपः ।

क्षितिरसमतिरम्यमात्मनोऽन्तः

कथयति चारुतयैव शालपोतः ॥ २५ ॥

उन सनातन भगवान्के हृदयमें विराजमान होनेपर पुरुष इस जगत्के लिये शान्तस्वरूप हो जाता है, जिस प्रकार नवीन शालवृक्ष अपने सौन्दर्यसे ही भीतर भरे हुए अति सुन्दर पार्थिव रसको बतला देता है ॥ २५ ॥

यमनियमविधूतकल्मषाणा-

मनुदिनमच्युतसक्तमानसानाम् ।

अपगतमदमानमत्सराणां

त्यज भट दूरतरेण मानवानाम् ॥ २६ ॥

हे दूत! यम और नियमके द्वारा जिनकी पापराशि दूर हो गयी है, जिनका हृदय निरन्तर श्रीअच्युतमें ही आसक्त रहता है तथा जिनमें गर्व, अभिमान और मात्सर्यका लेश भी नहीं रहा है, उन मनुष्योंको तुम दूरहीसे त्याग देना ॥ २६ ॥

हृदि यदि भगवाननादिरास्ते

हरिरसिशङ्खगदाधरोऽव्ययात्मा ।

तदघमघविघातकर्तृभिन्नं

भवति कथं सति चान्धकारमर्के ॥ २७ ॥

यदि खड्ग, शंख और गदाधारी अव्ययात्मा भगवान् हरि हृदयमें विराजमान हैं तो उन पापनाशक भगवान्के द्वारा उसके सभी पाप नष्ट हो जाते हैं। सूर्यके रहते हुए भला अन्धकार कैसे ठहर सकता है? ॥ २७ ॥

हरति परधनं निहन्ति जन्तून्
वदति तथाऽनृतनिष्ठुराणि यश्च ।

अशुभजनितदुर्मदस्य पुंसः
कलुषमतेर्हृदि तस्य नास्त्यनन्तः ॥ २८ ॥

जो पुरुष दूसरोंका धन हरण करता है, जीवोंकी हिंसा करता है तथा मिथ्या और कटुभाषण करता है, उस अशुभ कर्मोन्मत्त दुष्टबुद्धिके हृदयमें भगवान् अनन्त नहीं टिक सकते ॥ २८ ॥

न सहति परसम्पदं विनिन्दान्
कलुषमतिः कुरुते सतामसाधुः ।

न यजति न ददाति यश्च सन्तं
मनसि न तस्य जनार्दनोऽधमस्य ॥ २९ ॥

जो कुमति दूसरोंके वैभवको नहीं देख सकता, जो दूसरोंकी निन्दा करता है, साधुजनोंका अपकार करता है तथा [सम्पन्न होकर भी] न तो श्रीविष्णुभगवान्की पूजा ही करता है और न [उनके भक्तोंको] दान ही देता है, उस अधमके हृदयमें श्रीजनार्दनका निवास कभी नहीं हो सकता ॥ २९ ॥

परमसुहृदि बान्धवे कलत्रे
सुततनयापितृमातृभृत्यवर्गे ।

शठमतिरुपयाति योऽर्थतृष्णां
तमधमचेष्टमवेहि नास्य भक्तम् ॥ ३० ॥

जो दुष्टबुद्धि अपने परम सुहृद्, बन्धु-बान्धव, स्त्री, पुत्र, कन्या,

माता, पिता तथा भृत्यवर्गके प्रति अर्थतृष्णा प्रकट करता है, उस पापाचारीको भगवान्‌का भक्त मत समझो ॥ ३० ॥

अशुभमतिरसत्प्रवृत्तिसक्त-

स्सततमनार्यकुशीलसङ्गमत्तः ।

अनुदिनकृतपापबन्धयुक्तः

पुरुषपशुर्न हि वासुदेवभक्तः ॥ ३१ ॥

जो दुर्बुद्धि पुरुष असत्कर्मोंमें लगा रहता है, नीच पुरुषोंके आचार और उन्हींके संगमें उन्मत्त रहता है तथा नित्यप्रति पापमय कर्मबन्धनसे ही बँधता जाता है, वह मनुष्यरूप पशु ही है; वह भगवान् वासुदेवका भक्त नहीं हो सकता ॥ ३१ ॥

सकलमिदमहं च वासुदेवः

परमपुमान् परमेश्वरः स एकः ।

इति मतिरचला भवत्यनन्ते

हृदयगते ब्रज तान्विहाय दूरात् ॥ ३२ ॥

यह सकल प्रपंच और मैं एक परमपुरुष परमेश्वर वासुदेव ही हूँ, हृदयमें भगवान् अनन्तके स्थित होनेसे जिनकी ऐसी स्थिर बुद्धि हो गयी हो, उन्हें तुम दूरहीसे छोड़कर चले जाना ॥ ३२ ॥

कमलनयन वासुदेव विष्णो

धरणिधराच्युत शङ्खचक्रपाणे ।

भव शरणमितीरयन्ति ये वै

त्यज भट दूरतरेण तानपापान् ॥ ३३ ॥

‘हे कमलनयन! हे वासुदेव! हे विष्णो! हे धरणिधर! हे अच्युत! हे शंख-चक्रपाणे! आप हमें शरण दीजिये’—जो लोग इस प्रकार पुकारते हों, उन निष्पाप व्यक्तियोंको तुम दूरसे ही त्याग देना ॥ ३३ ॥

वसति मनसि यस्य सोऽव्ययात्मा
 पुरुषवरस्य न तस्य दृष्टिपाते ।
 तव गतिरथ वा ममास्ति चक्र-
 प्रतिहतवीर्यबलस्य सोऽन्यलोक्यः ॥ ३४ ॥

जिस पुरुषश्रेष्ठके अन्तःकरणमें वे अव्ययात्मा भगवान् विराजते हैं, उसका जहाँतक दृष्टिपात होता है वहाँतक भगवान्‌के चक्रके प्रभावसे अपने बल-वीर्य नष्ट हो जानेके कारण तुम्हारी अथवा मेरी गति नहीं हो सकती। वह (महापुरुष) तो अन्य (वैकुण्ठादि) लोकोंका पात्र है ॥ ३४ ॥

कालिङ्ग उवाच

इति निजभटशासनाय देवो
 रवितनयस्स किलाह धर्मराजः ।
 मम कथितमिदं च तेन तुभ्यं
 कुरुवर सम्यगिदं मयापि चोक्तम् ॥ ३५ ॥

कालिङ्ग बोला—हे कुरुवर! अपने दूतको शिक्षा देनेके लिये सूर्यपुत्र धर्मराजने उससे इस प्रकार कहा। मुझसे यह प्रसंग उस जातिस्मर मुनिने कहा था और मैंने यह सम्पूर्ण कथा तुमको सुना दी है ॥ ३५ ॥

श्रीभीष्म उवाच

नकुलैतन्ममाख्यातं पूर्वं तेन द्विजन्मना ।
 कलिङ्गदेशादभ्येत्य प्रीतेन सुमहात्मना ॥ ३६ ॥

श्रीभीष्मजी बोले—हे नकुल! पूर्वकालमें कलिङ्ग-देशसे आये हुए उस महात्मा ब्राह्मणने प्रसन्न होकर मुझे यह सब विषय सुनाया था ॥ ३६ ॥

मयाप्येतद्यथान्यायं सम्यग्वत्स तवोदितम्।
यथा विष्णुमृते नान्यत्राणं संसारसागरे ॥ ३७ ॥

हे वत्स! वही सम्पूर्ण वृत्तान्त, जिस प्रकार कि इस संसार-सागरमें एक विष्णुभगवान्को छोड़कर जीवका और कोई भी रक्षक नहीं है, मैंने ज्यों-का-त्यों तुम्हें सुना दिया ॥ ३७ ॥

किङ्कराः पाशदण्डाश्च न यमो न च यातनाः।
समर्थास्तस्य यस्यात्मा केशवालम्बनस्सदा ॥ ३८ ॥

जिसका हृदय निरन्तर भगवत्परायण रहता है उसका यम, यमदूत, यमपाश, यमदण्ड अथवा यम-यातना कुछ भी नहीं बिगाड़ सकते ॥ ३८ ॥

श्रीपराशर उवाच

एतन्मुने समाख्यातं गीतं वैवस्वतेन यत्।
त्वत्प्रश्नानुगतं सम्यक्किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥ ३९ ॥

श्रीपराशरजी बोले—हे मुने! तुम्हारे प्रश्नके अनुसार जो कुछ यमने कहा था, वह सब मैंने तुम्हें भलीप्रकार सुना दिया, अब और क्या सुनना चाहते हो? ॥ ३९ ॥

॥ इति श्रीविष्णुपुराणे तृतीयेंऽंशे यमगीता सम्पूर्णा ॥

